डॉ. कुँवर नारायण के काव्य में धार्मिक-दार्शनिक मूल्य

डॉ. किरण शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर

हिन्दी विभाग,

डी.ए.वी. कॉलेज फॉर गर्ल्ज़, यमुनानगर ।

श्री कुँवर नारायीलनण जी हिन्दी साहित्य में गद्य लेखन के बावजूद भी कवि रूप में अधिक प्रसिद्ध है। ये अपने काव्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का दावा करने वाले कवि हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इनका अभिप्राय उस बौद्धिक स्वतंत्रता से है, जो सदा से जीवन के प्रति निडर और अन्वेषी प्रश्न उठाती रही है। इनके काव्य में यथार्थ का खुरदरापन भी मिलता है, और उसका सहज-सौन्दर्य भी मिलता है। ये जीवन के संघषों से जूझते हुए अपने आपको कहीं परास्त नहीं पाते। इनकी कविताओं में संशय संभ्रम, प्रशनाकुलता बीज शब्द के रूप में विद्यमान है। आलोचकों का मानना है कि इनकी कविता में व्यर्थ का उलझाव, अरव़बारी सतहीपन और वैचारिक धुंध ही बजाय संयम, परिष्कार और साफ-सुथरापन झलकता है।

कुँवर नारायण न केवल कवि है अपितु एक चिंतक भी हैं, वे दार्शनिक कवि हैं, जो अपनी कल्पना शक्ति से हमारी धारणाओं को बिल्कुल उलटकर उन पर प्रश्न चिन्ह लगाते है। हमारी संस्कृति धार्मिक और दार्शनिक मूलयों को अपने में समाहित किए रहती है। कुँवर नारायण जी ने भारतीय संस्कृति के आधार भूत इन मूल्यों को अपने काव्य में यथासंभव वर्णित किया है।

धर्म और दर्शन के क्षेत्र में ईश्वर अथवा ब्रह्म की कल्पना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है। सार्थक जीवन की खोज में मानव किसी अलौकिक सत्ता को स्वीकार करता रहा है- और उसे कोई भी नाम देकर उस पर अपनी आस्था को टिकाता रहा है। भारत में अधिकांश मतवादों के प्रतिष्ठापक ईश्वर को परम-शक्ति मानते हैं और वही दार्शनिक चिन्तन पद्धतियों का आधार रहा है। प्राचीन कथाओं को आधार बनाकर रचे जाने वाले काव्यों में 'आत्मजयी' का विशिष्ट स्थान है। आधुनिक चेतना सम्पन्न कवि कुँवर नारायण ने इसमें कठोपनिषद् में वर्णित नचिकेता की कथा को आधार बनाकर जीवन तथा मृत्यु का गहन चिन्तन किया है कि यह जगत् अचानक ही विकसित नहीं हुआ, यह सृष्टि निरूदेद्र्श्य नहीं है, और इसीलिए इसका कोई निर्माण कर्ता भी है जो अपनी सृष्टि के प्रति कोमल भाव रखता है।

"अनुभव करता हूं इन सब के पीछे
कहीं कोई वृहत्तर योजना जिसमें
मानों किसी अज्ञात हितैषी का हाथ है।"[1]

[1] कुँवर नारायणः आत्मजयी, पृ. 37

यदि किसी को यह विचार असत्य ज्ञान पड़े तो कवि उसके जीवन में कोई कमी अनुभव करता है। जीने का ढंग विकृत होने पर सारा चिन्तन भी विकृत हो जाता हे। यही बात ईश्वर के प्रति अनास्था की प्रवृत्ति के मूल में है। यानि ईश्वर के संबंध में गलत ढंग से उठाई गई चर्चा विकार-युक्त जीवन का चिन्ह है।"[2]

भारत में धर्म को मानव जीवन के साथ पूरी तरह जोड़ कर देखने की भी एक परम्परा रही है। 'धारयतीति धर्मः में यह परम्परा स्पष्ट है। ईश्वर की ऐसी कल्पना अत्यन्त विरल है। कवि ने जिस ईश्वर की आकांक्षा प्रकट की है, वह मानवीय ईश्वर ही है। नचिकेता का कथन है-

मुझे हाथ चाहिए-वत्सल
नेत्र-ममता से छल छल।
आत्मीयता-जिसकी छांह में चल सकूँ।
सुरक्षा- जिसकी बांह में पल सकूँ।
अमरत्व जो इन विध्वंस यात्राओं का साक्षी हो।
इस रचना के लिए उत्तरदायी एक ईश्वर दो।"[3]

इसमें सन्देह नहीं कि मानवीय ईश्वर की कल्पना कई कवियों ने की है। वास्तव में ऐसे स्थलों पर कवियों की मानवतावादी दृष्टि का ही उन्मेष है। ईश्वर को चिन्तन के क्षेत्र से निकालकर व्यवहार के क्षेत्र तक लाने के पीछे भी यही दृष्टि रही है। "डॉ दिनेश ने ईश्वर को मानव की विराट कल्पना की उपज कहा है। जिससे मानव अपने बौनेपन को मिटाना चाहता है"[4]

नैतिकता के साथ ही धर्म के प्रति भी मानवतावादी दृष्टि विकासित हुई है। धर्म के मानव-विरोधी रूप को हेय बताया गया है धर्म की स्थिति वहाँ स्वीकार की गई है, जहाँ वह मानवीय भावनाओं से मेल खाता है। धर्म के कथित अनुयायी या रक्षक प्रदर्शन और ब्राह्मडम्बरों को ही धर्म मान बैठते है। कवि ने नई पीढ़ी के प्रतीक नचिकेता द्वारा धर्म के इस रूप का विरोध करवाया है, जहाँ धार्मिक कृत्य का आधार मनुष्य न होकर कोई अदृश्य है। **'आत्मजयी'** में नचिकेता यज्ञ के संबंध में कहता है।

"यह सब धर्म नहीं-धर्म-सामग्री का प्रदर्शन है
अन्न, धृत, पशु, पुरोहित में......
शायद इस निष्ठा में हर सवाल बाधा है
जिसमें मनुष्य नहीं अदृश्य का साझा है।
तुम सब चतुर और चमत्कारी"[5]

[2] कुँवर नारायणः आत्मजयी, पृ, 6-7
[3] कुँवर नारायणः आत्मजयी, पृ, 18
[4] डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेशे अहं मेरा गेय, पृ. 12
[5] कुँवर नारायणः आत्मजयी, पृ. 10

कवि मानव-प्रेम को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। हिंसा के विरुद्ध प्यार में आस्था प्रकट करते हैं, क्योंकि मानव में विवेक है विचार है और यह कि जीवन चंगेजों का इतिहास नहीं है।"[6]

काव्य में ऐसे स्थल अल्प हैं जिनमें मोक्ष को ही साध्य मूल्य माना हो, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि भौतिक सुख-समृद्धि को ही सब कुछ मानकर जीवन के किसी महत्तर उद्देश्य की और कवियों की दृष्टि नहीं गई। भौतिक समृद्धि को आधुनिक जीवन की विडम्बना बताते हुए कवि ने **'आत्मजयी'** में एक प्राचीन आख्यान के द्वारा जीवन के किसी महत्तर उद्देश्य का संकेत किया है। काव्य नायक नचिकेता यम से वरदान में भौतिक समृद्धि नहीं मांगता, क्योंकि उसे वह जीवन की सार्थकता का निकष नहीं मानता। वह जीवन के 'कुछ और ध्येय'[7] की बात कहता है। अन्ततः वह जिस श्रेष्ठ का वरण करता है, उसमें शरीर की माँगों का स्थगन है। तब वह मुक्ति-बोध तक पहुंचता है

"जीवन केवल सुख साधना नहीं।

वह दिव्य शक्ति-

अनवरत खोज

अनथक प्रयास

वह मुक्ति बोध"

उसको पशु सा केवल तन से बांधना नहीं।[8]

निर्वाण या मुक्ति बोध के उपर्युक्त सन्दर्भ कहीं-कहीं आए हैं। किसी मानवोपरि सत्ता या लोकोत्तर जगत आदि के अवमूल्यन या उन्हें कोई मानवीय रूप देने की प्रवृत्ति मुक्ति के संबंध में भी दिखाई देती है। मानववादी दृष्टि के उन्मेष तथा व्यक्ति स्वातन्त्रय जैसी विचारधाराओं ने मुक्ति या निर्वाण को भी मानवीय परिप्रेक्ष्य दे दिया है। डा0 देवराज परमश्रेय को मानव जीवन की सम्भावनाओं का अच्चतम रूप कहते हैं।[9]

कवि में, विशेषतः मूल्यों के विघटन का जो प्रश्न उठाया है, उसका बहुत कुछ आधार सामाजिक संबंध है। सभ्यता की कथित उन्नति के कारण समाज का ढांचा बदल गया है। शहरों में भीड़ बढ़ गई है जीवन में यांत्रिकता आ गई है। परिणामतः सामाजिक संबंध बदल गए हैं, नगर जीवन की व्यस्तता और तेज गति के कारण सहज मानवीय संबंध लुप्त हो गए

"शहरों में इसकी सख्त मनाही है

कि कोई किसी से बिना जान-पहचान बोले

और कहे कि देखो बहार आई है"[10]

---

[6] कुँवर नारायणः चक्रव्यूह, पृ. 106
[7] कुँवर नारायणः आत्मजयी भूमिका, पृ. 7
[8] कुँवर नारायणः आत्मजयी, पृ. 74
[9] देवराजः संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ. 340
[10] कुँवर नारायणः परिवेशः हम तुम, पृ. 63

इनके काव्य में प्रणय को एक मूल्य के रुप में स्वीकार करने की प्रवृत्ति व्यापक स्तर पर दिखाई देती है। कवि का प्रेम विषयक दृष्टि कोण समान नहीं हे। कहीं प्रणय को आध्यात्मिक स्पर्श देने का प्रयास है, तो कहीं उसे मानव के यथार्थ जीवन से सम्बंद्ध करके देखने का आग्रह कहीं, देह भोग की गौणता है तो कहीं उसकी प्रमुखता। किन्तु प्रायः दैहिक-स्तर के सुख का निषेध नहीं किया है। उल्लेखनीय है कि केवल शारीरिक सुख को ही मिलन नहीं माना गया । कवि ने तन की तृप्ति को विष के समकक्ष माना है, यदि उसमें मन का सहयोग नहीं-

"यह प्यार नहीं,
अपने को झूठा करना है,
यह तृप्ति जहर है
यह दयनीय पराजय
सह लुँगा अपनी भूख लूंगा
किन्तु यह भीख नहीं
मुझकों वंचित ही रहने दो
छोड़ो अभिनय"[11]

हालांकि प्रबंध काव्य में मूल्यों की अभिव्यक्ति अधिक स्पष्ट होती है, किन्तु पर-हित की व्यंजना अनेक मुक्तक रचनाओं में भी हुई है। मुक्तक कविताओं में कवियों ने कहीं-कहीं अन्तर्कथाओं के द्वारा परोपकार के महत्व की व्यंजना कर दी है। उदारणार्थ कवि ने दधीचि की अन्तर्कथा द्वारा देव-असुर संघर्ष में पराहितार्थ अपने त्याग का संकल्प व्यक्त किया है।

"ये दधीचि हड्डियाँ
हर दाह में तप लें
न जाने कौन देव आसुरी संघर्ष हों अभी
जिसमें तपाई हड्डियाँ मेरी
यशस्वी हों"[12]

कुंवर नारायण के अनुसार-"वे सामाजिक मूल्य कोई माने नहीं रखते जो समाज के नाम पर व्यक्ति के अधिकांश सर्जक और सांस्कृतिक स्त्रोतों को कुंठित कर दें। उदार सहिष्णु और शिक्षित समाज का अर्थ ही यह है कि व्यक्ति पर कम से कम प्रतिबंधों की आवश्यकता पड़े और श्रेष्ठतम व्यक्ति-विभूतियाँ उस समाज में अपने को बाहर न अनुभव करें। व्यक्तित्व को दबाकर समाज को समृद्ध नहीं किया जा सकता।"[13]

---

[11] कुँवर नारायणः परिवेशः हम तुम, पृ. 40
[12] कुँवर नारायणः चक्रव्यूह, पृ. 107
[13] कुँवर नारायणः परिवेशः हम तुम (पाठको से), पृ. 5

विकसित व्यक्तित्व के लिए मानसिक स्वतंत्रता आवश्यक है कवि मानव की सामर्थ्य और शक्ति के विविध सन्दर्भ उठाते हुए कहते हैंः-

"विकसित व्यक्ति ही वह देवता है
इतर मानव जिसे केवल पूजता हैः
आंक लेगा वह पनपकर
विश्व का विस्तार अपनी अस्मिता में.....
सिर्फ उसकी बुद्धि को हर दासता से मुक्त रहने दो।"[14]

कवि मनुष्य और संसार के बीच शून्य को भरने का साधन कर्म को मानते है। व्यक्ति के विकास और उसकी निजता व महत्ता ये लक्ष्य तभी प्राप्य हैं जब व्यक्ति अपने ढूंढे हुए रास्तों पर अनवरत बढ़ता चले। कवि की निम्नालिखित पंक्तियाँ आज के मानव की इस भावना को सुस्पष्ट व्यंजना देती हैः-

"हो न यह भ्रम
दूसरों का आसरा ताका,
लड़ा
क्योंकि मुझकों कोई था न रास्ता
चला
क्योंकि चलना ही सहज आता हैं।"[15]

दो स्थितियाँ जो संघर्षरत मानव के जीवन में आ सकती हैं। प्रथम स्थिति वह है जहाँ खेवनहार अपनी नाव में संधि से जल भरता देखकर भी निश्चित है। दूसरी स्थिति में नाविक नाव को मझधार तक ले जाता है और जब लहरों के सम्मुख लाचार हो जाते है, तब पतवार तो छोड़ देता है, और आत्म विश्वास के सहारे, शरीर को नाव और बाहों को पतवार समझकर अपनी शक्ति से पार जाने का संकल्प करता है। ऐसी स्थिति में चाहे सफलता प्राप्त न भी हो तब भी कवि उस निष्क्रिय नाविक की तुलना में इसे सफल कहेगा। उसकी दृष्टि में महत्व प्रयत्न करने में है। कवि तो उस संघर्ष को भी काम्य मानते हैं जिसका लक्ष्य चाहे अस्पष्ट ही क्यों न हो संघर्ष का अपना एक सौन्दर्य है, आकर्षण है

"क्या बुरा है मान लूं यदि
चाल का सम्पूर्ण आकर्षण आनिशित मार्ग
जिसका अन्त है शायद
कहीं भी
या कहीं भी नहीं[16]

[14] कुँवर नारायणः चक्रव्यूह, पृ. 122
[15] कुँवर नारायणः चक्रव्यूह, पृ. 79

राजतंत्र का स्प्ट निषेध भी यत्र-तत्र मिलता है। 'आत्मजयी' इस दृष्टि से विशेष उल्लेख्य रचना है। आधुनिक चेतना सम्पन्न नयी पीढ़ी का प्रतीक नचिकेता पुराने चिन्तन के प्रतीक शासक वाजश्रवा को मात्र साधारण प्राणी होने का अहसास करवाना चाहता है।

"तुम हर जगह भूख-प्यास वाले साधारण प्राणी हो
जिसके मुकुल और सिंहासन पर
सूर्य की किरणें इस तरह पड़ रही हैं
कि तुम दिव्य दिखते हो, पर यह सारी शोभा
सूर्यास्त होते ही विलख उठेगी।"[17]

कवि के अनुसार राजा की भूमिका एक प्रशासनिक प्रमुख की है। इस नाते उसके चारों ओर जो वातावरण है उसमें उसकी अपनी कोई विशेषता नहीं। इसलिए उसका व्यक्तिगत हित राष्ट्र-हित से अलग माना जाना चाहिए। अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए या राज्य- वृद्धि के लिए यज्ञ आदि के विधान में बलि देना ऐसा उपाय है जो नचिकेता की दृष्टि में आपत्तिजनक है। राजा के ऐसे आचरण को वह गर्हित मानता है जिसका आधार स्वार्थ, उच्छृंखलता या अविवेक हो

"तुम्हारी इच्छा करते ही हत्या होती है।
तुम समृद्ध होगे
लेकिन उससे पहले
समझाओं मुझे अपने कल्याण का आधार
ये निरीह आहुतियाँ। यह रक्त। यह हिंसा।"[18]

क्वि ने वयस्तता और उलझन के कारण आधुनिक जीवन में लय और व्यवस्था का अभाव माना है, जिसका प्रभाव काव्य पर भी पड़ा है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि मानव को ही ईश्वर मानने की अथवा मानव ईश्वर की कल्पना में क्रमशः स्पष्ट होती गई है। इसी प्रकार धर्म एवम् नैतिकता को मानवीय सन्दर्भ में ही देखने का प्रयास किया गया है। ईश्वरीय की अपेक्षा मानवीय को अधिक महत्त्व दिए जाने की प्रवृत्ति को देखते हुए कहा जा सकता है कि ईश्वर तत्व का क्रमशः विघटन हो गया है। ईश्वर के साथ जुड़े अनेक अन्य मूल्य भी या तो विघटित हो गए अथवा उनका रूप बदल गया है। भाग्यवाद ईश्वरीय विधान के रूप में बहुत कम स्वीकार्य हुआ है। भाग्य की अपेक्षा कर्म को अधिक महत्व देने वाली प्रवृत्ति भी नई नहीं है। भाग्य और निष्काम कर्म का जो प्रश्न है, उनकी स्थिति भी दैवीय न रहकर मानवीय हो गई है। मूल्यों में यह परिवर्तन बहुत महत्त्वपूर्ण है।

---

[16] कुँवर नारायणः चक्रव्यूह, पृ. 120
[17] कुँवर नारायणः चक्रव्यूह, पृ. 125
[18] कुँवर नारायणः आत्मजयी, पृ. 5-6

आज की मानवीय चेतना के लिए इहलोक से परे किसी लोक की कल्पना संभव नहीं है। आस्तिक कवि भी जगत् को सत्य मानते हैं क्योंकि यह सत्य ईश्वर की सृष्टि है और ईश्वर को अस्वीकार करने वाले कवियों की दृष्टि में तो सृष्टि ही सत्य है। वस्तुतः चिन्तन का आधार ईश्वर और पारलौकिकता नहीं रहा, इसलिए समस्त सन्दर्भ शुद्ध मानवीय हो गए है। धर्म और चिन्तन के क्षेत्र में पर्याप्त*आलोड़न* परिणाम स्वरूप मूल्यों का केन्द्र ईश्वर की जगह मानव बन गया है। इसलिए मानव-ईश्वर की परिकल्पना की गई है मानव की सर्वोच्ता का प्रमुख स्वर गूँजा है। सामाजिक संबंधों में सौहार्द के अभाव पर कवि ने प्रायः खेद प्रकट किया है। विशेष रूप से नागरिक जीवन की यांत्रिकता, असहजता और स्वार्थपरता की भर्त्सना की गई है।

मानवीय संबंधों में प्रणय का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है और जीवन में इसकी वांछनीयता के कारण ही इसे मूल्य के रूप में मान्यता मिली है। लौकिक जीवन में सुख सार्थकता और रस का संचरण प्रणय में ही होता है। प्रेम आध्यात्मिक अनुभूति का साधन भी माना गया है। प्रणय शारीरिक भोग नहीं, किन्तु उसमें भोग पक्ष का निषेध भी नहीं है।

मनुष्य की समाजिकता की पहचान उसके आत्म त्याग में हैं पर-हित सदा से ही बहुमान्य मूल्य रहा है प्रकृति-प्रतीकों द्वारा या पौराणीक कथाओं द्वारा स्वार्थ-त्याग एवं परोपकार के महत्व का बरवान किया गया है। व्यक्ति-स्वतान्त्रय को एक महत्त्वपूर्ण मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। सामाजिक और वैयक्तिक प्रगति के सन्दर्भ में संघर्ष अथवा कर्मशीलता के प्रतिष्ठा मिली है। मानव-आस्तित्व की सार्थकता कर्म में ही है। प्रकृति से हमें अविरत संघर्ष की प्रेरणा मिलती है। बिना कर्म के कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। इस बात पर बल दिया गया है।

तंत्र कोई भी हो, शासन का सर्वप्रमुख कर्तव्य है लोक को सुखी बनाना। लोकाराधन ही शासन नीति का लक्ष्य होना चाहिए। भारत के शासक वर्ग की इसलिए भर्त्सना की गई है कि वे आत्म हित में लीन रहते है तथा लोक-हित की उपेक्षा कर रहे हैं।

अन्त में केवल इतना कि बदलती जीवन-दृष्टि के अनुरूप साहित्य को भी बदलना पड़ता है। हर युग अपने साथ जो नई चुनौतियां लाता है। उसे स्वीकार करते हुए कवि या साहित्य कार को साहित्य में नित्य नए प्रयोग करते हुए अपने कर्तव्य का निर्वाह करते रहना चाहिए।

क्योंकि-

“हर आगत क्षण
ग्रस हमको
अपने अनुरूप ढाल लेता है।
बद्ध कीट को भौरा
श्यान बरन देता है।”[19]

[19] कुँवर नारायणः आत्मजयी, पृ. 8

आधार ग्रन्थ

डॉ. कुँवर नारायण : चक्रव्यूह (1956)

डॉ. कुँवर नारायण : परिवेशः हम तुम 2018 (वि0)

डॉ. कुँवर नारायण : आत्मजयी (1958)